Chap-6

षष्ठ अध्याय

काव्य-समालोचना, काव्य-सौंदर्य, भाषा, अलंकार, रस, गुण, दोष आदि

काव्य-समालोचना, काव्य-सौंदर्य, भाषा, अलंकार, रस, गुण, दोष आदि

कवि जयसिंह 'व्यथित'जी मूलत: भाव और सौंदर्य के कवि हैं। उनकी कविता में संवेदनाओं के स्वर ही संप्रेक्षण का तीक्ष्ण हथियार बनकर प्रस्तुत हुआ है। व्यथित जी के काव्य को समभाव और कला के दो निश्चित पक्षों में विभाजित नहीं कर सकतें क्योंकि उनकी कलादृष्टि विस्तार के साथ कहीं भी अरोपित पारिलक्षित नहीं हुई। चाहे उनकी मुक्त रचनाएँ हों या प्रबन्ध रचनाएँ, भाषा की सहजता और भावों की उत्कृष्टता उनकी पहचान बनकर सामने आई है। कवि रस युक्त रागात्मक काव्य रचना में विश्वास रखता है न कि पांड़ित्य प्रदर्शन करने वाली और बौद्धिक आरोपों से दुरूह कविता करने में। कवि का विश्वास है कि कविता संवेदनाओं की भूमि पर भावोद्वेलित क्षणों में उद्भूत होती है। डॉ. 'व्यथित'जी कविता को कला के असह्य विभाव से या अलंकार आदि की दुरूहता से बोझिल बनाने के पक्षधर नहीं हैं।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के काव्य के भावपक्ष की समर्थतता का और प्रधानता का मुख्य कारण है। उनके सोच का जमीन से जुड़ना और उनकी

अभिव्यक्ति का लोक प्रांगण में प्रसारित होना आदि उनकी कृतियाँ जितनी आँचलिक प्रदेशों में अथवा पूर्वांचलिय उत्तरा खंड के लोक प्रांगण में जितनी स्वीकार्य हुई है उतनी काव्य के कथा कथित बौद्धिक परिकर में मान्य नहीं हुई। साहित्य लेखन के विस्तार को देखते हुए उनकी लेखकीय क्षमता पर कतिय संदेह नहीं किया जा सकता। किन्तु कलापक्षीय विविध साज-सज्ञा के आरोपणों से विहिन इनकी कविता को साहित्यिक मंच पर इतना सम्मान नहीं दिया गया।

भारतीय संस्कृति की यह अक्षुण्य भावाधारा रही है। जिसमें हम संपूर्ण भक्तिकालिन कविताओं का समावेश कर सकते हैं। सूर, कबीर, मीरा, रसखान, रहीम और नरोत्तम जैसे कवियों ने कभी भी और कहीं भी किसी भी प्रकार के आरोपणों से, प्रदर्शन वृत्ति से और सस्ती वाहवाही से अपने आपको नहीं जोड़ा। अष्टछापी कवि कुम्भनदास का दृष्टांत संदर्भ में ध्यानाकर्षक है। जब उनकी गायन की प्रसिद्धि सुनकर मोहम्मद जलाउद्दीन अकबर बादशाह ने अपनी राजधानी फतेहपुर सिकरी में उन्हें आमंत्रित किया और भरे हुए दरबार में उन्हें पद गायन का आदेश दी, तब भरे दरबार में निर्भीक कवि कुम्भनदास ने गाकर सुनाया-

" संतन को कहा सिकरी सो काम,
आवत-जावत पनहियाँ टूटी बिसरी गयो हरि नाम,
जाको मुख देखत दु:ख उपजत ताको करनी पड़ी सलाम।"

इस प्रकार कुम्भनदास ने बड़ी निर्भीकता से कह दिया कि हमें तो तेरा मुँह देखने से पाप लगता है और तब भी यहाँ आकर तुझे सलाम करनी पड़ती है। बादशाह अकबर अगर चाहता तो, कुंभनदास जी का सर कलम करवा सकता था किन्तु वह अपने पद की मर्यादा से जुड़ा हुआ था। इसलिए वह कुछ भी न कह पाया। कहने का अर्थ यही है कि उस समय भी ऐसे निर्भीक और निरविकारी कवि थे और आज भी ऐसे कवि है। जो किसी भी प्रकार की बाध्यता को स्वीकार नहीं करते। डॉ. 'व्यथित'जी का काव्य सौंदर्य उनकी इसी विशिष्टता को ज्ञापित करता

है। उन्होंने किसी भी दबाव को स्वीकार नहीं किया। अधिकांशत: उनकी कविता की केन्द्रिय स्वर भारतीय ग्राम्य संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। उनकी कविताएँ आम आदमी की रोजमर्रा की जिन्दगी से जुड़ी है। जिसमें किसी भी प्रकार का प्रदर्शन या आरोपण नहीं है।

वैसे तो डॉ. 'व्यथित' जी अपनी कविता में अनेक बार समय को विवश्ताएँ से संघर्ष करते हुए दर्शव्य हैं किन्तु उनका इन्कलाब अथवा क्रांति का स्वर अनुशासनहीनता की पराधिक्ता को स्पर्श नहीं करता। निहायत गाँधीवादी, शिष्टता, शालीनता, शौम्यता और धैर्य के साथ अन्याय और अनीति से लड़ने की प्रवृति उनकी कविता के भावपक्ष को सम्बल प्रदान करती है।

मुख्य रूप से उनकी कविता के भावपक्ष पर गाँधीवाद अहिंसक विरोध का प्रभाव देखा जा सकता है। गाँधीवादी भावात्मक उत्कर्ष का यदि हम अध्ययन करें तो ज्ञात होगा कि गाँधी अहिंसा और शांति का पक्षधर तो थे किन्तु अशक्य से जूझने के हटधर्मिता उसे एक लौह पुरुष के रूप में स्थापित करता है। व्यथित जी का भावपक्ष में यही उत्कर्ष पाठक का ध्यान आकर्षित करता है। विषय चाहे पारंपरित पौराणिक मिथक का हो अथवा आधुनिक असंगत और अनीतिपूर्ण व्यवस्था का हो। व्यथित जी ने बड़ी निर्भीकता के साथ आम आदमी के संवेदनाओं को झकझोरते हुए अपनी बात सही अंदाज में व्यक्त की है।

जहाँ तक कवि के रागत्मक उत्कर्ष का प्रश्न है वहाँ मुख्य रूप से वह भक्ति, शांति और करूण रस का समर्थक रहे हैं। भक्ति उसके काव्य का विषय है और निरविवाद स्थिति तक पहुँचा हुआ उसका शांतभावि चित्त आत्मस्थ होकर करूणा जैसे उद्वात रसो में समावेश हो जाता है।

काव्य-समालोचना :

कवि डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी काव्य की धरती पर बड़ी ही सहजगति से

अग्रसर हुए और यदि स्पष्टत: निकर्षरूप में कहा जाये तो हम कह सकते हैं कि उनका समग्र काव्य नीतिपरक आचार्यसंहिता के मर्यादा में निबद्ध है। जहाँ मातृभूमि के प्रति स्नेह है, राष्ट्र के प्रति समर्पित भावना है। मानवीयता के प्रति संवेदनशीलता है, आत्मिय स्वजनीय के प्रति शुभाकांक्षिभाव है, प्रियजनो के प्रति अगाढय प्रेम है, विद्वान मनीषि, साहित्यकार, लेखक एवं गुरूजनों के प्रति श्रद्धा भाव इन सबमें भी इनके काव्य में राष्ट्रीय चेतना की भावना सर्वाधिक मुखर रही है।

आज की विषम परिस्थिति, विकृत मानसिकता वाले एवम् देशद्रोहियों को देखते हुए कवि उन देशभक्तों स्वतंत्रता सैनानियों की याद दिलाते हैं, जिन्होंने देश के लिए सब कुछ न्यौछावर कर दिया था। महाराणा प्रताप, रानी लक्ष्मीबाई, मंगल पांड़े, चंद्रशेखर और भगत सिंह आदि देश भक्तों में स्वार्थ का अंधापन नहीं था। किन्तु आज धृतराष्ट्र के अंधेपन ने चारों ओर अंधेरा फैला दिया है।

''जहाँ लिए केसरिया बाना, हर–हर की स्वर माला थी,
जहाँ देश की शान के खातिर, जौहर वाली ज्वाला थी,
जहाँ भटकते राजदुलारे, दोनों के भी लाले थे,
जहाँ घास की रोटी दूभर, पड़े पाँव में छाले थे,
वहाँ घिनौने स्वार्थवाद में, भूला निज पहचान कहाँ?''

''भड़क उठे हैं शोले'' कविता में एकता की भावना को स्थापित करते हुए कवि अन्याय के खिलाफ आवाज उठाने के लिए प्रेरित करता है। यथा-

हिन्दु–मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, आपस की है नहीं लड़ाई,
धन्धेदारी दुष्टजनों की, देख रहा मैं भाग–बटाई
भालचन्द्र भगवान बनो तुम, नेत्र तीसरा खोले.... ॥

स्वतंत्र देश के स्वतंत्र नागरिक होने के बावजूद भी हम स्वतंत्रता के रसास्वादन

से वंचित हैं। 'देश भूख से तड़प रहा' में कवि कहता है कि अंग्रेजों से तो मुक्त करा लिया है किन्तु अब स्वदेशी शोषकों से देश को मुक्त कराना है। यथा-

''कहते हैं सब आजाद देश पर, दिखता घना अँधेरा है,
शासन जिनके हाथ देश का, उनकी ही पौ बारह है,
उनसे मुक्त कराकर अपनी, आजादी घर लाना है,
भूखे-भूखे देश जनों में, नवजीवन लहराना है।''

वर्तमान राजनैतिक स्थितियों पर कवि करारी चोट करता है, वोट की राजनीति को उजागर करता है, परदे के पीछे की स्थितियों से अवगत कराता है, देशभक्तों के लिबास में गुंडों का पर्दाफाश करता है -यथा-

''निकल पड़े भिखमंगे घर से, निकली सबकी टोली है,
भीख वोट की देना भइया, यही सबों की बोली है।
भिखमंगे हैं नकली सारे, गुण्डा-दल की टोली है॥''

आज का दौर जहाँ आदमी-आदमी का दुश्मन बना है, पैसा ही बोल रहा है, प्यार-मोहब्बत, सद्भावना, भाई-चारा जैसे शब्द अर्थहीन साबित हो रहे हैं; ऐसे में उन यथार्थों से अनुभूत कवि कहता है-

''अन्य की तो बात और आदमी को आदमी से,
जरा नहीं प्यार है, बात भले मीठी-मीठी,
पैसों का गुलाम वह तो, पैसों का ही यार है॥''

कवि जहाँ स्वाभिमान को महत्व देता है वहीं अहंकार से दुराव भी रखता है, क्योंकि घमंड़ आदमी को ध्वस्त कर देता है। कवि इससे लोगों को बचाना चाहता है, यथा-

''बड़ा खटपटी अहम हमारा, चैन न लेने देता है,

जहरीला डंखीला अतिशय, बाहों में भर लेता है,

डंड़ा–लाठी उसके साथी, दंड–नीति अपनाता है,

और खड़ा हो मध्य मार्ग में, मन का मैल बढ़ाता है।

अहम हमारा हावी हम पर हरदम नाच नचाता है॥''

'व्यापारी' कविता अति यथार्थपूर्ण है, समसामयिक वातावरण से मेल खाती है। आज का जमाना 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का है, इस युग में हरिश्चन्द्र को भीख मांगनी पड़ सकती है, इस यथार्थ को व्यंग्यपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है यथा-

''नंबर दो से दुनिया चलती, नंबर एक भिखारी है,

चलना जग के साथ अगर, तो छोड़ो यह लाचारी है,

नंबर दो का पल्लू पकड़ो, जिसका ठेकेदार हूँ॥''

(यर्थाथ की जमीन पर 'युग–चिन्तन')

लेखक– डॉ. माया प्रकाश पाण्डेय।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दन ग्रंथ।

कवि जयसिंह 'व्यथित'जी द्वारा रचित कृति 'नेताजी' खण्ड-काव्य इसी राष्ट्रीय उदार मनीषि स्थिति को व्यक्त करते हैं। यह एक ऐतिहासिक काव्य है। यह 'नेताजी' (खण्ड-काव्य) एक ही छन्द ''सवैया तीसा'' से मण्डित है। संस्कृत का 'अनुष्टुप' या 'उपजाति' वृत्त अपने महाकाव्यों एवं पुराण ग्रन्थों में अखण्ड प्रवाह में बढ़ता रहता है, मानस में जैसे चौपाइयाँ आगे बढ़ती रहती हैं, उसी प्रकार सवैया तीसा हो, 'एकतीसा' हो या 'बत्तीसा' हो, वह अखण्ड प्रवाह में बहता रहता है। यहाँ प्रस्तुत काव्य 'नेताजी' की 332 कड़ियाँ हमें उसी प्रवाह में ले जाती हैं। प्रवाह इस कारण अविच्छिन्न-अखण्ड कहता हूँ कि प्रवाह को रोकने वाला एक भी शब्द या एक भी प्रसंग कहीं भी दीख नहीं पड़ता है। यह काव्य है प्रसाद गुण से

समृद्ध है और ''स्वभावोक्ति'' अलंकार से तो भरा पड़ा है, उपरान्त ''उपमा'' एवं उत्प्रेक्षा अलंकार के पद्य भी दिखाई पड़ते हैं। किन्तु 'रूपक' अलंकार के अनेकानेक उदाहरण मिलते हैं और शब्द समृद्धि भी इसकी आकर्षक है।

''हे मातृभूमि! हे प्राण-दायिनी, तुझको नमन करूँगा।
तेरी शक्ति-भक्ति में, मैया, श्रद्धा-सुमन धरूँगा॥''

प्रयोजन बताते हैं कि-

''देश-प्रेम, वह बिगुल बजाऊँ, जिसकी नहीं मिसाल है।
अमर शहादत नेताजी की, अद्भुत जली मशाल है॥''

चरित तो है ही, इसी कारण नेताजी के परिवार, जन्म आरम्भिक विकास आदि के निरूपण के साथ स्वातन्त्रय यज्ञ का आरम्भ एवं प्रगति, विचारभेद के कारण महासभा से अलग बनकर सशस्त्र संघर्ष का आरम्भ से लेकर अंग्रेजों के सामने व्यवस्थित युद्ध का ही चित्रण, कहाँ कहाँ घूमे, कैसे घूमे, जर्मनी का प्रवास इत्यादि यहाँ सुचारू रूप से वर्णित हुए हैं।

नेताजी कि मनोभावों का चित्रण-

''बन्धन उसका शत्रु बड़ा था, उससे ही वह लड़ता था,
बन्धन-मुक्त देश हो कैसे? पाठ यही नित पढ़ता था॥''

साम्प्रतिक परिस्थिति-

''इधर जुल्म के काले बादल, नभ-मंडल में छाये थे।
गरज-गरज कर बरस रहे थे, हाहाकार मचाये थे॥''

नायक का प्रभाव-

'' हाँक, सुनी जब नेताजी की, हिला कँगूरा गोरों का।
चढ़ा बवन्ड़र बाज गगन में, काँपा हिया बटेरों का॥

भाग–भाग की बात चली, अब शासक थर–थर काँपे थे।
कितने पहुँचे मुल्क विदेशी, कितने रस्ता नापे थे॥''

उल्लेखनीय तो यह बात है कि जब वे आर्थिक दृष्टि से बड़ी चिन्ता में थे भामाशाह की भाँति वीर हबीबुर जैसे दाता की मदद मिली।

अपनी मनीषा तो देखिए:–

''धन की कमी नहीं अब, भाई, रण की बजी बधाई है।
रण में कूद रक्त से सींचो, राष्ट्रवेली मुर्झाई है॥''

कूच के समय की एक उत्प्रेक्षा देखिए–

''तभी जोश में मुक्ति–वाहिनी, दीमापुर जा पहुँची थी।
जाने नाग लोटता पग पर गोरी–सेना चिहुँकी थी ॥''
''भले हार जापान गया है, चिन्ता हमें न करनी है ।
करनी से ही अपनी हमको, तिरना यह 'वैतरनी' है ॥''

संघर्ष चरम कोटि पर पहुँचा था। इस संघर्ष का परिणाम दु:खान्त के रूप आया था।

''कुछ समझें कुछ बूझे तब तक, हुई ग़जब अनहोनी थी।
तायहुकू में प्लेन ध्वस्त था, जग की सूरत रोनी थी ॥''
''पूर्ण हुआ अब खेल, खिलाड़ी, नहीं धरा पर आयेगा ।
धरती का शृंगार अमर जो, नाम अमर रह जायेगा ॥''

सचमुच करूणान्तिकी की गाथा यहाँ ही पूर्ण हो जाती है, किन्तु सुवास तो आगे बढ़ रही है। कवि ने अपने हृदय की व्यथा और आगे का दु:ख शेष पद्यों में गाया है। आज के नेता का तो चरित्र देखिए।

''बाँटो और बनाओ बुद्धू, छल-प्रपंच सिखलाते हैं ।
यही नीति अपनाते, फिर भी, नेता वे कहलाते हैं ॥''

नेता कैसा चाहिए यह भी कवि ने बताया है-

''धन-संपति का मोह न जिनको, सत्ता जिनकी दासी है।
जिनके देश धर्म की महिमा, गाते भारतवासी हैं।
ऐसे देश भक्त-बलिदानी, नेता वही कहायेंगे।
मातृभूमि के हित-चिन्तन में, तन मन सभी चढ़ायेगे॥''

शहीदों के साथ स्वर्गस्थित नेताजी की भावना-

''अमर शहीद देश के सारे, बात एक ही बूझे हैं।
पूँछ रहे खुद 'नेताजी' क्या, इसीलिए हम जूझे हैं? ॥
कुरबानी की कसम तुम्हें, क्या, ऐसे हमको लूटोगे?
हमें नहीं विश्वास कभी, था इतनी जल्दी टूटोगे? ॥
दिव्य लोक में पड़ा हुआ मैं, धैर्य-धीरता खोता हूँ।
प्रिय स्वदेश की फूट देख मैं, फूट-फूट कर होता हूँ।''

नेताजी के हृदय का दर्द देखिए:-

''खाते इसका और खोदते, दुश्मन का गुण गाते हैं ।
ऐसे दुष्ट-दरिन्दों को क्यों, छाती से चिपकाते हैं॥''

(इतिहास काव्य: नेताजी)

लेखक- पद्मश्री डॉ. केशवदास का. शास्त्री।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनंदन ग्रंथ।

कवि मिथकीय प्रयोगों के साथ जब सामिक परिस्थितियों से रूबरू होते हैं तो

अभिव्यक्ति में सहज ही एक चमत्कार सा प्रस्तुत हो जाता है। इसकी कथावस्तु वैसे तो रामायण की पारंपरित कथा पर आधारित है किन्तु पात्रों की विशिष्ट भंगिमाओं को प्रस्तुत करते हुए डॉ. 'व्यथित'जी ने इसे एक नया आयाम देने का यत्न किया है।

अभी तक लोग रानी कैकेयी को लांछित ही करते आ रहे थे, किन्तु मनीषी कवि 'व्यथित'जी ने कैकेयी की व्यथा को समझा और परखा है, साथ ही वे उससे व्यथित भी हुए हैं। वे 'वंदना के स्वर' में लिखते हैं।

''दुखित कैकेयी पड़ी युगों से, न्याय नहीं मिल पाया है।
न्याय हेतु यह कथा उसी की, बाकी प्रभु की दया है ॥''

'व्यथित' जी मंगलाचरण में भी इस ओर संकेत करते हैं-

''वर्षों से जो तापित-शापित, नारी विरल महान थी ।
कैकेयी वह नाम अमर, जो मानव-मन अरमान थी ॥
उसकी ही यह व्यथा-कथा है, 'कैकेयी के राम'की।
पूर्ण कथा निर्विन्घ शारदे! चाह नहीं विश्राम की॥''

कवि ने इस काव्य को कई सर्गो में विभक्त किया है, जो सभी सार्थक हैं एवं कथावृत की ओर इंगित करते हैं। ये हैं- अवध, चिन्तन, विरह, मिलन सर्ग।

अवध सर्ग में वे महाराजा दशरथ के गुणों की प्रशंसा करते हुए कैकेयी की ओर उन्मुख हो गये हैं-

''कैकेयी जो रानी, ब्याही, विदुषी खूब सयानी थी।
अवधपुरी की शान बनी वह, राजमहल पटरानी थी॥
दिव्य रूप, गुण गंध सभी था, राजा के मन भायी थी।
अवधपुरी भी पाकर उसको, मन ही मन हर्षायी थी॥

रूप सुन्दरी जैसी रानी, वैसी वह मर्दानी थी।
राज–काज में कूद पड़ झट, हिम्मत की जौलानी थी॥''

बहुत वर्षों बाद महाराज दशरथ के चार पुत्र हुए। राम सबसे बड़े थे। वे धर्म-धुरीण और बलशाली थे। उनके जन्मजात गुणों से सभी लोग अत्यधिक प्रभावित थे। महारानी कैकेयी उन्हें भरत से भी अधिक चाहती थी। वह उन्हें पूर्ण भगवान बनाने की महत्वाकांक्षा रखती थी। कवि के शब्दों में-

''कैकेयी का स्वप्न एक बस, राम पूर्ण भगवान बने।
माया–मोह न व्यापे उसको, जीव जगत का कलेश हरे॥
राजभवन के सुख–वैभव से कभी न कोई पूर्ण हुआ।
निकला त्याग महल के सुख को, सत्य वही सम्पूर्ण हुआ॥''

आगे चलकर चारों राजकुमारों का विवाह सम्पन्न होता है। अयोध्या में हर्षातिरेक का सागर लहराता है। तीनों रानियाँ भी अतिशय प्रसन्न हैं। कुछ समय बाद राजा के मन में विचार आता है कि राम का राज्यभिषेक कर दिया जाय। तैयारी होती है, किन्तु यह कैकेयी को अच्छी नहीं लगती। वह राम को केवल अवध तक ही सीमित नहीं रखना चाहती । वह कहती है-

''राम सिर्फ अवधेश बने, मुझको तो स्वीकार्य नहीं।
कल ही उसका राजतिलक हो, यह भी है अनिवार्य नहीं॥
अभी उसे है दक्षिण जाना, मार निशाचर आना है।
निश्चिर हीन धरा को करके, धरणीधर कहलाना है॥''

किन्तु महाराज दशरथ उससे सहमत नहीं होते और राजतिलक करने को उतावले हो जाते हैं। तब रानी कैकेयी उनसे दो टूक शब्दों में कहती है-

''रानी बोली, राजन सुन लो, मोह ने तुमको घेरा है ।

मोहपाश की लीला अभ्दुत जिसने गति को फेरा है।।''

रानी की बातें सुनते-सुनते राजा कह पड़ते हैं-

'' राजा बोले- 'बस कर रानी, अधिक नहीं सुन पाऊँगा।
राजतिलक कल राम का होगा, बात यही दोहराऊँगा।।
फिर वे बोले, 'वचन-वचन है,' उसकी लान बचाऊँगा।
भले जायं ये प्राण तुच्छ, पर कुल की शान बढ़ाऊँगा।।''

तब रानी ने भी अपना निर्णय सुना दिया-

''तो कहती मैं सुन लो राजा, दिल को कड़ा बनाना है।
राम जायगा वन में बीहड़ चौदह बरस बिताना है ।।
भरत राज्य रखवाला होगा, अवसर यह दिलवाना है।
वर मेरे ये दोनो राजन आज इन्हें मनवाना है।।''

विरह सर्ग में स्वयं राम भी माता कैकेयी के प्रति आभार प्रकट करते हुए कहते हैं-

''उड़ना सीख रहा मैं, वन में उड़ने की हठ ठानी है ।
धन्य कैकेयी मातु भवानी, अवसर दी मनमानी है।।
वन का राजा मिला जो मुझको, धन्य वही सच जीवन है ।
सत के पथ पर कदम बढ़ाऊँ, कण-कण में नवजीवन है ।।''

भरत जी के बुरा-भला कहने पर कैकेयी उन्हें समझाने का प्रयास करती और अपने हृदय की बात कहती हैं-

''राजा तू हो कभी अवध का, ऐसा कहाँ विचार किया।
राम विश्व सम्राट बने बस, उसका ही उपचार किया।।

राजा नहीं अवध का तू तो, राम राज रखवाला है।

जब तक राम तपस्या रत है, तब तक उसका वाला है॥''

इतना ही नहीं, वरन् वह राम को वन भेजने का अपना उद्देश्य भी बताती है कि दक्षिण के राक्षसों का विनाश करना अत्यन्त आवश्यक है, जिसे हमारा प्यारा राम ही कर सकता है, यथा-

''जिससे राम गया वन दक्षिण, रावण जहाँ विराजा है।

मरें निशाचर मुक्त धरा हो, अन्तिम व्रत यह साजा है॥''

मिलन सर्ग में जब भरत के साथ गुरू, माताएँ, राज परिवार तथा प्रजाजन चित्रकूट पहुँचते हैं तो वहाँ सब का वनोचित स्वागत सत्कार करने के पश्चात् राम कैकेयी के सम्बन्ध में अपने भाव व्यक्त करते हैं-

''मातु कैकेयी सती साधवी, सत की ज्योति जलाई है।

सत के पथ पर रही सदा से, सत पर कलश चढ़ाई है॥

राजन मरे मोह वश अपने उसमें किसका दोष कहाँ।

और विजन में आया खुद से, जाना किसको कहाँ जहाँ॥

मोह धन्य जो प्रेम पिता का, उसने उनको मारा है।

माँ का उसमें दोष कहाँ क्या ? उसने तो कुल तारा है॥''

इसके अतिरिक्त अपने जीवन-निर्माण का सारा श्रेय वे माता कैकेयी को ही देते हैं। जिससे स्पष्ट हो जाता है कि कैकेयी के राम को वन भेजने का उद्देश्य कितना स्पृहणीय था। निर्मल सर्ग में सभी का माता की जय जयकर करना इस बात का द्योतक है कि कैकेयी निश्चय ही निश्छल थी और उसके मन में राम के अहित की बात थी ही नहीं।

और अन्त में कविवर श्री जयसिंह 'व्यथित'जी के शब्दों में-

''हुआ जगत जय घोष इसी से जग ने सुन्दर किया विधान।

अब से दुनिया कहे यही बस, 'कैकेयी के राम महान' ॥''

(कैकेयी के राम: एक अद्‌भुत खण्ड-काव्य)

लेखक- डॉ. महेश अवस्थी।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनंदन-ग्रंथ।

वैसे तो मैथिलिशरण गुप्त ने भी कैकेयी के पारंपरित त्याज्य और गलित रूप को उभारने का यत्न किया था किन्तु डॉ. जयसिंह 'व्यथित' जी ने इसे और भी उदारवादी चेतना से व्यक्त करके अपने अभिनव कला दृष्टि का परिचय दिया है। कहीं-कहीं कवि युगिन संदर्भों से जुड़कर जब समसामियीक समस्याओं से रूबरु होते हैं तो वह अपेक्षाकृत कहीं अधिक सपाट और स्थूल अभिव्यक्ति से जुड़ जाता है। जैसे 'युग-दर्पण' में कवि कहता है-

''जिस झोपड़ी की शान्त शीतल छाँव में, बेखबर गाँधी-विनोबा सो रहे।

उस झोपड़ी के फूस से तुम भूलकर भी, आग का खिलवाड़ अब खेलो नहीं।

ठोकरें बुलडोजरों की मार कर, शान्ति की पहचान को मोड़ो नहीं।

तोड़ो भले सब कुछ मगर तुम, झोपड़ी के स्वप्न को तोड़ो नहीं॥''

हमारे गाँवों में आज भी कैसी गरीबी है, कैसी मजबूरियाँ हैं ? यह निम्न पंक्तियों के दर्पण में स्पष्ट हुई हैं-

''दुर्दिन के दिन देखे मैंने, देखे दु:ख के ताप सभी।

दाल रही, तब नमक नहीं था, नमक रहा तब दाल नहीं।

गेहूँ चावल सपन सभी कुछ, घूँट खून का पीता था।

मोटिया धान्य जभी कुछ मिलता, क्षुधा तृप्त कर जीता था॥''

आज पढ़े-लिखे नवयुवक डिग्री प्राप्त करने को आतुर हैं। बड़े परिश्रम के

उपरान्त शैक्षणिक डिग्री मिलती है, पर उसका क्या महत्व है-देखिए-

''यह डिग्री तुम्हारी मुबारक तुम्हीं को,
जो रोटी का रिश्ता निभाती नहीं है।''

आज मिलें बन्द हो रही हैं, मज़दूर बेकार हो रहे हैं, बड़े पैमाने पर बेरोजगारी, भूख और विवशता फैली है, उन गरीब मज़दुरों की करूण स्थिति इन पंक्तियों में देखिए:

'मैं बन्द मील का कारीगर, बरबाद गुलिस्ताँ मेरा है।'

आज का युवक रोटी-रोजगार न मिलने के कारण गुमराह हो रहा है। उसे कृषि या व्यापार का कोई अनुभव नहीं है। ऐसे आधुनिक बेबस युवकों के जीवन का एक चित्र कवि ने 'टूटती जवानी' में अंकित किया है। बेकार की बेबसी, अस्त-व्यस्तता, परेशानी, भूख और व्यथा का चित्रण देखिए:

''रोजी से महरूम जवानी, रोज-रोज है टूट रही।
बोझा बन माँ बाप का बचपन, खेलकूद में बीता था।
लगा समझने बड़ा हुआ जब, जीवन-घट तब रीता था।''

\- - - - - - - - - - - -

''पढ़ लिखकर तैयार हुआ, तब देखा गाड़ी छूट रही।''

\- -

''बी.ए. पास बेकार अरे मैं। घरवाली भी साथ है।
बूढ़े हैं माँ-बाप तड़पते। उनकी टूटी आस है॥''

शिक्षित डिग्रीधारी बेकार भूखों की विक्षिप्त जमात आँधी तूफान की तरह आगे बढ़ रही है, परिणाम क्या होगा सोचिए तो सही-

''ए बेकार भूखे नठारे चले हैं। ए भारत के उगते सितार चले हैं।

ए डिग्री के भर-भर के भारे चले हैं। ए भूचाल-आँधी बवन्डर चले हैं।

मिलेगा नहीं हक्क जीने का कैसे ? ए रोटी का सपना सजाने चले हैं।''

धार्मिक कट्टरता, साम्प्रदायिक समस्या ने घर-परिवारों में अलंध्य दीवारें खड़ी कर दी हैं। धर्म-सम्प्रदाय राजनिति, सामाजिक भेदभाव, ऊँच नीच की कृत्रिम भावना ने अनेक दीवारें खड़ी कर समाज और परिवार को, हमारे राष्ट्र को विभाजित कर दिया है। इस करूण स्थिति का वर्णन ''दीवारें'' एवं ''देखा नहीं धर्म लड़ते कहीं पर'' शीर्षक कविताओं में देखिए:-

''अगणित बनी दीवारें फिर भी, घर का कहीं निशान नहीं।
हिन्दू-मुस्लिम बीच दीवारें, सिक्ख ईसाई की दीवारें।
हरिजन-गिरिजन ठाकुर-बाभन, इन सबकी बनी दीवारें।
भेद भाव की बनी दीवारें, रगड़े-झगड़े की दीवारें।
गाँव नगर जड़-चेतन जितने, उन सब की भी बनी दीवारें।
ऐसी बनीं दीवारें अगणित, नहीं बना घर एक कहीं॥''

\- - - - - - - - - - - - - - -

'देखा नहीं धर्म लड़ते कहीं पर, महज स्वार्थ लड़ते है देखा मही पर।'

(युगीन आह्वानः ''युग-दर्पण'')

लेखक. डॉ. रामचरण मेहन्द्र।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दन-ग्रंथ।

कहने का तात्पर्य यही है कि डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी ने जितने अधिकार से पौराणिक कथाओं का काव्यांकन किया है उतना अधिकार शायद सीधे-सीधे आधुनिक विषयों पर नहीं है। **डॉ. रामबहादुर मिश्र ने ठीक ही कहा है**-''डॉ. जयसिंह 'व्यथित'जी के 'साहित्यकार' को परिभाषित करने के लिए जो लोग

उनकी भाषा और शिल्प की ओर उन्मुख होते हैं उन्हें कुछ खास हासिल नहीं हो सकता। व्यथित जी का सारा साहित्य अनुभूति और यथार्थ के धरातल से होकर गुजरता है, उसमें भोगे हुए यथार्थ का बिम्ब स्पष्ट परिलक्षित होता है।

एक प्रवासी (परदेसी) होकर सुदूर प्रांत (गुजरात) में अपनी जीविका के निमित्त पलायन किए व्यथित जी को सदैव अपनी माटी की सोंधी गंध याद आती रही है और वे अपनी मातृभूमि से इतना दूर रहकर भी यहाँ से प्राप्त संस्कारों को सँजोये रहे। जब वे जीवन के महासंग्राम में कूदे तो उन्होंने एक पराक्रमी योद्धा की भाँति अपनी सफल साधना का परचम लहराया। वे सृजन धर्मी हैं, उनका सृजन समाज और राष्ट्र के लिए है जिसकी एक बानगी आर्तनाद में देखी जा सकती है।

आर्तनाद में समाज में व्याप्त यथार्थ को अभिव्यक्त करते हुए लेखक के स्मृति पटल पर भूत, वर्तमान एवं भविष्य की अवधारणाएँ तथा विचार अपने मूर्त रूपों में विद्यमान रहते हैं। रचना करते समय लेखक का एक विचार होता है, प्रयोजन होता है जो उसे रचना करने के लिए प्रेरित करता है वह समाज में विसंगतियों को देखता है और अपनी विश्व दृष्टि के अनुसार समाज के परिवर्तन की दिशा का निर्धारण करता है। वस्तुत: प्रत्येक लेखक अपने परिवेश और परिस्थितियों की देन होता है।

स्वतंत्रता के उपरांत देश में व्यापक स्तर पर आर्थिक राजनैतिक एवं सामाजिक परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों से हिन्दी साहित्य भी प्रभावित हुआ और साहित्य में इन घटनाओं और मूल्यों का जो भी लेखा-जोखा उपस्थित हुआ उसे साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में बखूबी दर्शाया है।

आज जीवन मूल्य गिरते जा रहे हैं। भोगवादी प्रवृत्ति के चलते हम अपनी सुख सुविधाओं को जुटाने के चक्कर में भ्रष्ट से भ्रष्टम होते गए समाज को राजनीति ने बुरी तरह से प्रभावित किया और समाज में भ्रष्टाचार का बोल बाला हो गया। जब हमने अपने अतीत को झाँकने का प्रयास किया तो आभास हुआ कि जिन प्रतिनायकों को आज तक हमने भ्रष्ट, अनैतिक एवं अमानवीय प्रतीक पुरुषों के रूप में मान्यता

दे रखी है वे आज के नायकों से बेहतर हैं । इसी वैचारिक पृष्ठभूमि पर डॉ. व्यथित ने आर्तनाद का सृजन किया है। जैसा कि पूर्व में ही कहा जा चुका है कि जिन मनीषियों को व्यथित के साहित्य में तराशे हुए शिल्प की तलाश होगी उन्हें हताश होना पड़ेगा। व्यथित तो विचारों और अनुभूतियों को भावनाओं का जामा पहनाकर हमारे समक्ष प्रस्तुत करने में सिद्ध हस्त हैं- **'अरथ अमित अति आखर थोरे।'**

(आर्तनाद की सृष्टि और कवि की दृष्टि)

लेखक:- डॉ. रामबहादुर मिश्र।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दन-ग्रंथ।

जहाँ कवि पौराणिक आख्यानों के प्रभाव मंडल में बैठकर अपनी बात आरोपित करता है, वहाँ उसका कवि रूप तिरोहित होकर एक प्रवक्ता का रूप सामने आ जाता है। जैसे आर्तनाद में कवि कहता है-

''पूछा उसने सिर्फ यही, क्या शादी तुम्हें बनानी है?
उत्तर में बस हाँ या ना था, हुई कहाँ मनमानी है।
बात नहीं यदि उसकी भायी, करना था इनकार तुम्हें।
अबला नारि पराई पर क्या, शोभा यह व्यवहार तुम्हें।।''

कवि ने इस कर्म की घोर निन्दा की है। उसने राम को यहाँ पूर्ण असफल देखा है। यहाँ असफल राजनीति का साक्षात् स्वरूप पाया है। उन्हें धिक्कार है, उनकी निन्दा की है। कवि ने पूछा है कि ऐसा कर्म करने की प्रेरणा किस नीतिशास्त्र वेद व अन्य धर्म-ग्रंथ ने दिया है?

''कौन वेद किस नीति शास्त्र ने ऐसा निम्न विधान किया ?
जिसके बलबूते पर तूने नीचा सर सन्धान किया।
नीतिशास्त्र अज्ञान तुम्हारा, जिससे यह दुष्कर्म किया।
जिसका खायें उसका खोदें, इसमें क्या सत्कर्म किया।।''

उस रामत्व की कवि ने निन्दा की है जिसने विवाह के प्रस्ताव मात्र से नाक-कान काट लिया है। दूसरी ओर रावणी प्रवृति जिसकी समाज में निन्दा होती है कितना सही मिला। यहाँ कवि ने राम का विकृत स्वरूप प्रस्तुत किया है। रावण की श्लाध्य प्रवृत्ति बदला लेने पर देखने को मिलती है। वह सीता को बड़े सम्मान के साथ सुरम्य अशोक वाटिका में प्रतिष्ठित करता है। रावण भी बलपूर्वक सीता का नाक-कान काट सकता था, अनेक दुर्व्यवहार कर सकता था। कवि का कथन रावण के शब्दों में प्रस्तुत है-

''हर कर उन्हें मान से रक्खा, मनमानी कर सकता था।
नहीं किया यह नीति हमारी, दुसह दुक्ख दे सकता था।
सीता हरण हुआ जिस कारण उसका है उल्लेख नहीं।
उल्लू अपना सीधा हो बस बात यही सविशेष रही।।''

कवि यहाँ पर राम और रावण के युद्ध को नाक-कान कर्तन मात्र से ही आरम्भ समझता है। तिल को ताड़ मान विद्रोह का झंड़ा फहराया जाता है। कवि ने यह भी स्वीकारा है कि हर व्यक्ति हर जगह पहुँच नहीं पाता। यद्यपि रावण शासक था तथा उसकी सम्प्रभुता वरेण्य थी परन्तु घर के फूटने की बात को कभी कान नहीं किया। वह अपने राज्य में अपना प्रबल अनुशासन मानता था। यह दूसरी बात है कि भाई को फोड़ने के लिए कोई प्रबल विरोधी मिल जाय। ऐसी ही स्थिति में घर फूंका गया, समुद्र को बाँधा गया। यथा-

''तिल को ताड़ बनाया फिर तो खड़ा एक विद्रोह किया।
घुसकर आग लगादी घर में भाई में भी द्रोह किया।
घर फूटे घर जाय किसी का इसको भी चरितार्थ किया।
फोड़ा बन्धु विभीषण तूने मैली पूर्ण मुराद किया।।''

रावण अपना एक अवगुण स्वयं स्वीकार करता है कि हीन भाव को वह सदा

सर्वदा दबाने का प्रयास किया है। वह झुकने में अभ्यस्त नहीं वह स्वयं कहता है कि-

''मैं तो शासक शक्ति समर्पित झुकने का अभ्यास नहीं।
बल पौरुष का गर्व मुझे जो दीन भाव स्वीकार नहीं।
यही एक बस अवगुण मेरा, जिससे मेरी हार हुई।
और यही बस सद्गुण उनका, जिससे उनकी जीत हुई॥''

रावण के पराजित हो जाने पर मानो तख्ता ही पलट गया। सभी बातें विपरीत होती चली गई। वाल्मीकि तथा अन्य उनके कवियों ने राम चरित की गाथा को लिखकर रावण के भव्य चरित्र पर कलंक के अनेक, आक्षेप लगा दिये। रावण को गहराई में गाड़कर मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघरों में रामत्व की परिकल्पना की जा रही है। कवि ने वास्तविकता तो यह माना है कि वहाँ तो कोई राम नहीं है। मात्र राम के तथा कथित भक्त खड़े पहरा सादे रहे हैं। समाज ने इन्हें अपने लिए काल सर्प के रूप में जान रखा है। यहाँ चतुर्दिक अन्याय का बोलबाला है। कवि राम को सचेत करता है-

''राम मिलें तो उन्हें बताना, दानव दल निःशेष करें।
मानव मरण सेज पर बैठा, रक्षा स्वयं महेश करें॥
उठा त्रिशूल त्रिलोकी धावे, नेत्र तीसरा खोल दिखायें।
अपने पर जब अंकुश लायें, सपने सुन्दर सभी सजायें॥''

वास्तविकता से सबको अवगत कराता हुआ रावण सबको प्रणाम कर प्रस्थान करता है। प्रथम खण्ड यही समाप्त होता है।

समाज का अत्यन्त विकृत रूप देखकर कविर्मनीषी व्यथित जी को द्वितीय सर्ग में चिन्तन हेतु बाध्य हो जाना पडता है। वह राम राज्य से चलकर युगों-युगों को

पार करता हुआ गाँधी युग में आकर प्रवेश करता है। वहाँ से वह आधुनिक गाँधीवाद की बात करने के लिए कार्यालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार आदि की बात करने लगता है। गाँधी के भिति चित्त पर भी संदेह व्यक्त करने लगता है।

''हर दफ्तर हर आफिस में तुम, लटक रहे हे गाँधी हो।
देखो अपनी हालत देखो भले रहे तुम आँधी हो।
बना लूट का अन्तिम साधन आज तुम्हारा नाम यहाँ।
शासन को बस नाम चाहिए, नहीं तुम्हारा काम यहाँ।।''

आज मन्दिरों में राम कैद हैं। हर राम का पुजारी कड़वी नीम की तरह जन मानस में उद्विग्न भावभर देनेवाला है। गाँधीजी की सत्य-अहिंसा आदि दृढ़ व्रत तत्काल भले प्रभावी रहा हो पर आज उसका प्रभाव अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। ऊबकर कवि अपनी इतिवृत्ति को इस लोक से दूर देखना चाहता है। यह युग चिन्तन बदल चुका है। कवि के शब्द परखें-

''चलो यहाँ से चुपके चुपके मर्त्य लोक से दूर चलें।
रहने दो इस युग को जलता जैसा चाहें लोग पलें।
बहल गये हैं ख्याल सभी के युग की यह तासीर बड़ी।
करना है कुछ काम नहीं पर लेना है जागीर बड़ी।।''

आज के युग चिन्तन में विरोधाभास पल रहा है। दुर्जनों के दुष्कृत्य आज सज्ञनों को भोगना पड़ रहा है। थाने पर कोई प्रविष्टि बिना मनमानी धन पाये नहीं लिखी जाती। लूट के बाद वास्तविक लुटाई तो पुलिसों की लुटाई ही होती है। ठीक रास्ते पर चलने वाले पिटते हैं। उनकी सुने ही कौन? कवि के शब्दों में-

''हो हो हल्ला शान्त हुआ तब गये पुजारी थाने पर।
रपट डकैती दर्ज हुई फिर मुँह मांगा धन पाने पर।
चोर उचक्के दुर्जन जितने उनके अपने संघ यहाँ।

सत के खातिर शान्त रूप से जीने का सत संघ यहाँ॥''

भारतीय संस्कृति के छिट फुट छीटों को कवि सहन कर सकने में असमर्थ हो जाता है। समाज के दु:ख दर्द संत्रास तो उसे प्रत्यक्ष पीड़ित करते ही हैं। पुजारियों की पूजा, देवार्चन के विविध आयाम कवि को वैज्ञानिक नहीं ढोंग लगते हैं। कवि उन पर परूष शब्दों से प्रहार करने लगता है।

''मन्दिर में ही बन्द इन्हें रख बाहर नहीं निकालूँगा।
खाली थाली दिखा इन्हें फिर स्वयं पेट भर खाऊँगा।
ओढ़ दुपट्टा राम नाम का हुण्डी स्वयं भुनाऊँगा॥''

(आर्तनाद में आर्त स्वर)

लेखक: डॉ. आद्याप्रसाद सिंह 'प्रदीप'।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित' अभिनन्दन ग्रंथ।

जहाँ कवि आधुनिक अव्यवस्था और दमनकारी चक्र से घबराकर संपूर्ण व्यवस्था को कोसता है, वहाँ वह अपने मनोभावों को इस प्रकार व्यक्त करता है-

''त्रेता युग का रावण हूँ मैं, दिखते कहीं न राम मुझे।
पथराई हैं आँखें मेरी, लगता जीवन दीप बुझे॥
देख रहा सब बदतर मुझ से, फिर भी मनुज कहाते हैं।
काले कर्म, कमाई काली, पूजनीय बन जाते हैं॥''

कवि 'व्यथित'की काव्य-दृष्टि लोक रंजक है। कल्पना शक्ति और भी मन भावन है। अपनी सहज कल्पना की सीढ़ी से रावण की आत्मा को स्वप्नवस्था में जन-जन तक पहुँचा कर प्रश्नों और समस्याओं की ऐसी झड़ी कवि लगा देता है कि जागृतावस्था में सभी चिन्तन, मनन और शमन के लिए मजबूर हो जाते हैं। भ्रष्टाट्चार, व्यभिचार, अनाचार, दुराचार के पाश में बँधा हुआ इस भौतिकवादी युग

का हर व्यक्ति रावण के रावणत्व से प्रभावित हो चुका है। जिस के परिणाम स्वरूप जीवन के हर क्षेत्र में 'आर्तनाद' की करूण पुकार सुनाई पड़ रही है। आज हर व्यक्ति अपनी जगह पर चीखता चिल्लाता नजर आ रहा है। एक सार्थक शृंखला में यही कहना उपयुक्त लगता है कि 'आर्तनाद युगीन' पीड़ा का सचमुच पारावार है।

कवि 'व्यथित'जी की वैचारिक प्रौढ़ता इस रचना को और भी सशक्त बना देती है। तीन सर्गों में विभाजित इस ग्रंथ में हुंकार है, चिंतन है और है दोनों का अद्‌भुत सम्न्वय। राम और रावण की समन्वयात्मक शैली का उद्‌गाता कवि बड़े ही मर्मपूर्ण ढंग से कहता है-

''घट-घट में राम विराजे, घर-घर दिखता रावण है।

दोनों का जब मधुर मिलन हो, तब समझो जग पावन है॥''

कविवर 'व्यथित'का कवि हृदय सामाजिक पीड़ा से सराबोर है। कवि के दर्द भरे हृदय का अनहदनाद ही 'आर्तनाद' है। कवि, दर्द से बोझिल अपने हृदय को तथा समूची मानवता को 'राम-मार्ग' यानी अध्यात्म एवं भौतिकता के पूर्ण समन्वय में पाया है।

अन्त में मैं तो यही कहूँगा कि रचनाकार का भौतिक शरीर भले ही आधुनिकता से युक्त गुजरात प्रान्त में रहा हो किन्तु कवि का साहित्यिक और आध्यात्मिक मन अपनी माटी से जुड़ा है। यही धरती का जुड़ाव और मानवीय संवेदना से जुड़ाव ही कवि को कविमंच से उठाकर श्रेष्ठत्व प्रदान करता है। यही सृजनात्मक थाती कवि की अद्‌भुत पूंजी है जो बरबस पाठक को खींच लेती है।

('आर्तनाद' -युगीन पीड़ा का पारवार)

लेखक:- सुरेश चन्द्र शर्मा।

डॉ. जयसिंह 'व्यथित'अभिनन्दन-ग्रंथ।

काव्य सौंदर्य-

जब हम व्यथित जी के समग्र काव्य साहित्य का अध्ययन कर जाते है तब निष्कर्षत: निम्न लिखित तथ्य सामने आते हैं-

(1) कवि धार्मिक निष्ठावान हिन्दू भक्त है। जो सदैव अपने-अपने आराध्य के सेवा में समर्पित है रहता है।

(2) कवि अफनी रचनाओं में राष्ट्र की उदारवादी चनतना और आदर्शोनुमुख यथार्थ की ओर संवेदनशील होक अग्रसर हुआ है। इसी वजह से उसके काव्य का कला सौंदर्य पक्ष आरोपित अलंकरणों से दबा हुआ नहीं है।

(3) कवि सहज मानवीयता के स्तर पर अपनी उद्धात भावनाओं को प्रदर्शित करता है। वह अपने देश और देशवासियों को अपने आँचलिक पूर्व वासियों को तथा अपने परिसहवासियों को जागृत करता है, उनका आह्वाहन करता है कि वे अंधेरे से निकलकर ज्योत के पथ पर आगे बढ़े। कहीं भी कवि के काव्य में कलावादी आरोपण अथवा एक लादी हुई भाषा का दंभ दिखालाई नहीं देता। जैसे इन सहज काव्य पंक्तियों को देखने से ज्ञात होता है-

''छोटे-छोटे ग्वालों के संग मिलकर खेल रचाता था।
माखन-मिश्री, दूध-मलाई बाँट-बाँट कर खाता था।
ऊँच-नीच का भेद नहीं था सबको गले लगाता था।
''बड़े बाप का बेटा हूँ मैं'' यह भी नहीं बताता था।
भेद-भाव से परे कन्हैया समता-ममता धारी थे।
दिल-दिमाग से तन्मय होकर पढ़ते भी बनवारी थे।।''

जयसिंह 'व्यथित'जी (अभि.ग्रंथ-5/47)

कहीं-कहीं कवि ने काव्य में लालित्यपूर्ण चमत्कार प्रस्तूत करने का यत्न किया है तो वहाँ एक सायास आरोपण स्पष्ट ही आभाषित होता है जैसे-

''चमचम–चमचम चमके चपला, बूँदे झुक–झुक गायें रे।

उमड़–घुमड़ कर बदरा गरजे, मोरवा शोर मचाये रे॥''

इसमें 'बदरा' तथा 'रे' शब्दों ने आँचलिकता का लालित्य ला दिया है, किन्तु कहीं-कहीं कुछ दोष भी परिलक्षित होता है, जैसे-छन्द 24 में 'अनहद' का प्रयोग 'असीम' के लिए किया गया है, किन्तु 'अनहद' नाद होता है और असीम को अनहद कहने का प्रयत्न नहीं है। इसे 'बेहद' लिखा जा सकता था और छन्द मात्रा में भी कोई त्रुटि नहीं आती। छन्द 32 भी त्रुटिपूर्ण जान पड़ता है-'जन्म कोख से लिया देवकी' वाक्य से ऐसा ध्वनित होता है मानो देवकी ने कोख से जन्म लिया हो। कुछ श्रम करने से अच्छा वाक्यांश बन सकता था।

<u>भाषा–</u>

कवि व्यथित जी की काव्य भाषा अथवा गद्य भाषा एक समान्यान्तर स्तर पर आगे बढ़ी है। सीधी सच्ची भाषा में उनके अभिधा परक सरल वाक्य पाठक का ध्यान आकर्षित करते हैं। भाषा में बहुत स्थानों पर आँचलिक अवधी के क्रियापदो, संज्ञावाची शब्दो, कारको और विशेषणों में साक्षात् प्रयोग देखा जा सकता है। कवि का जितना अधिकार हिन्दी खड़ी बोली काव्य पर हैं, उतना ही अधिकार उनका आँचलिक अवधी भाषा पर है। गद्य एवं पद्य दोनों ही विधाओं में इन्होंने अवधीभाषा में पर्याप्त लिखा है। यही कारण है कि परोक्ष रूप से इनकी समग्र भाषा पर आँचलिक बोलियों का प्रयोग सर्वत्र आकर्षित करते हैं। उनकी हिन्दी में, उर्दू, अवधी, बृजभाषा तथा गुजराती भाषा का प्रभाव प्रत्यक्ष परिलक्षित होती है।

डॉ. व्यथित जी की काव्य की भाषा वस्तुत: जमीन से जुड़ी हुई भाषा है। उन्होंने आमलोगों के लिए आम लोगों की भाषा की प्रयोग किया। इतना ही नही उन्होंने छंद विधान उन लोकप्रिय कवियों की रचित छंदों के अनुसार की। जो अत्यंत ख्यात हुई है। जैसे सुभद्राकुमारी चौहान द्वारा रचित झांसी की रानी की

पंक्तियाँ हैं।

''सिंहासन हिल उठे राजवंशो ने भृक्टि तानी थी।
चमक उठी सन सत्तावन वह तलवार पुरानी थी।
बुंदेले हर बोले के मुख हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मरदानी वह तो झांसी वाली रानी थी।।''

नेताजी खंडकाव्य में लिखते हैं-

''हुआ देश आजाद अमन के, डंके घर-घर बाजे थे।
ब्रिटिश राज का अन्त हुआ था, प्रजातन्त्र हम साजे थे।।''
''सबके दिल की धड़कन वे थे, सबके दिल पर छाये थे।
ऊँच नीच का भेद नहीं था, सबको सब में पाये थे।।''

इसी तरह डॉ. व्यथित जी की काव्य रचनाओं में कहीं भी प्रदर्शन वृति हेतु, प्रदर्शन वृत्ति का कहीं भी आडंबर आभाषित नहीं होता। भाषा के साथ-साथ उनके कथ्य में नहायत सरलता और सादगी भरी हुई है। भाषा में उनका कथ्य सपाट बयानी की हद तक हमें बोल चाल की भाषा का आभास कराता है। जैसे-

''पढ़ाई हमारी यह किस काम की है?
जो बन्धन से हमको छुडाती नही है।
यह डिग्री तुम्हारी मुबारक तुम्हीं को।
जो शेरी से रिश्ता निभाती नहीं है ।
विधाता ने कैसे ये मानव गढ़ा है।
ऊँगलियों ने जिसकी जगत को पढ़ा है।
भुजाओं में जिसके है ताकत बला की ।

पर शिक्षा में कैसी घुटन यह कला की॥''

अलंकार, रस, गुण दोष आदि–

अलंकार, रस, पिंगल, छंद, काव्यदोष आदि काव्य सम्बधी आचार्यसंहिता का उन्होंने कहीं भी पालन नहीं किया। उनका समस्त काव्य सहज अभिव्यक्ति की शरल और सादा गति पर अग्रसर हुआ है।

इस तरह यह कहा जा सकता है कि उनके काव्य लेखन का उद्देश्य कविता के कला पक्ष को या अपने पांडित्य को प्रदर्शित करने का माध्यम नहीं रही,बल्कि समाज से सरूकार रखनेवाला उनका संवेदनशील सोच ही इसका प्रमुख आधार रहा। राष्ट्रीयता का उदात् भावना उनके अधिकांश काव्य ग्रंथों में देखी जा सकती है। कवि डॉ. व्यथित जी समय की विद्रुपताओं और असंगतियों के लिए मुख्यरूप से राजनीतिज्ञ को दोषी मानते हैं वे कहते हैं कि-

''यह तो काला नाग है काली दह का वंश।
दुर्जन इसका गोत्र है देता सबको दंश॥
संसद संशय से घिरी बिगड़ा सारा साज।
सांसद डाकू हो गये कौन चलाये राज॥
वर्षा, सूखा बाढ़ की जिनको सदा तलाश।
बने राक्षसी गिद्ध वे घर-घर ढूँढ़ें लाश॥''

भारतीय संस्कृति पर पाश्चात् सभ्यता का अनायास बढ़ता हुआ प्रभाव देखकर डॉ. व्यथित जी सचमुच ही व्यथित हो जाते हैं और कहने लगते हैं-

''जन्में हिन्दुस्तान में गाते इंग्लिश गान।
माँ को अपनी मारकर बनते क्यों शैतान।
भाषा भारत देस की हिन्दी माँ सी नेक।
अंग्रेजी सौतन बनी देवें उसको फेंक॥''

इसी तरह गाँधीवाद को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं-

''गाँधी तेरा नाम ले करते सभी बवाल।

सत्य अहिंसा शान्ति की बुझने लगी मशाल॥

गाँधी तुम मत भूलकर अब आना इस देश।

यहाँ लुटेरे आ बसे सुन लो यह सन्देश॥''

काव्य चाहे 'कैकेयी के राम' हो अथवा 'नेताजी' भाषा उनकी सर्वत्र सरल और सहज ही रहा है किन्तु कथ्य का अभिप्राय और कथ्य में छुपा व्यंग्य अपनी अलग पहचान बताते सामने आया है। काव्य में कला प्रदर्शन का व्यामोह कहीं नहीं पाला।

जैसा कि विगत पृष्ठों पर उल्लेख किया जा चुका है कि जयसिंह 'व्यथित'जी कोई काव्यशास्त्र के मानद् आचार्य नहीं हां और नहीं उनका लेखकीय उद्देश्य काव्य के माध्यम से अपना पांड़ित्य प्रदर्शन करना अथवा कला सौष्ठय प्रदर्शन करना ही रहा है। वस्तुत: व्यथित जी का समग्र काव्य भावना प्रधान रहा है तथा उसमें उपलब्ध कला चेतना के विविध प्रभाव सरज रूप से व्यक्त हुई है। उन्होंने कहीं भी बौद्धिक कला प्रदर्शन को अपनी कविता पर हावी नहीं होने दिया है। अतं में कहा जा सकता है कि चाहे डॉ. 'व्यथित' जी कला संचेतना के प्रति अपनी सतर्कता प्रेशक नहीं की किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि उनका कार्य सर्वथा कला विहीन है अथवा काव्य कला के उपकरणों का उन्हें सम्य्क ज्ञान नहीं है। बल्कि यह स्पष्टत: आभाषित होता है कि डॉ. व्यथित जी का काव्य मानवीय सहज संवेदना पर आधारित एक भावात्मक एवं रागात्मक काव्य है।

सप्तम अध्याय

समग्र मूल्यांकन एवं उपसंहार